आदिवासी अंचल में किशोर जीवन के मोड़ और स्कूल

रश्मि पालीवाल और आकाँक्षा त्यागी

समतामूलक और गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए ज़रूरी है कि देश की शिक्षा नीतियाँ गहन विचार-विमर्श और व्यापक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर बनाई जाएँ, यही वजह है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2019 को अन्तिम रूप देने के लिए इसका प्रारूप व्यापक विचार-विमर्श और सुझावों के लिए विभिन्न मंचों पर उपलब्ध कराया गया है।

रश्मि पालीवाल और आकाँक्षा त्यागी इस लेख में नई शिक्षा नीति के प्रारूप में दिए गए प्रावधान "वर्ष 2030 तक 3 से 18 वर्ष आयुवर्ग के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य गुणवत्तापूर्ण स्कूल की पहुँच एवं भागीदारी सुनिश्चित करना" को अमली जामा पहनाने की सम्भावनाओं की पड़ताल करता है, खासकर आदिवासी बच्चों की शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के मद्देनज़र। उनका सवाल यह भी हैं कि जब 'निःशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा के अधिकार अधिनियम' 2009 के कई अहम प्रावधानों को अमल में लाने के लिए केन्द्र और राज्य सरकारों को पिछड़ना पड़ा है तो अब यह भरोसा कैसे बने कि 3 से 18 साल की उम्र के बच्चों को अधिकार दे पाने में सरकारों की तैयारी वाक़ई में बन सकेगी?

लेख यह भी इंगित करता है कि नीतियाँ बनाने में एक स्थिर, सक्षम व मध्यमवर्गीय परिवार की मान्यता काम करती नज़र आती हैं लेकिन यह आदिवासी अंचल की वास्तविकताओं से बहुत दूर होती हैं। सं.

मई 31, 2019 को नई शिक्षा नीति का प्रारूप (Draft National Education Policy, 2019) शिक्षा मंत्रालय को प्रस्तुत किया गया है। इसमें यह प्रस्ताव दिया गया है कि शिक्षा का अधिकार अब 3 से 18 साल की उम्र तक माना जाना चाहिए,जो वर्तमान में 6 से 14 साल की उम्र तक है। यह माँग बहुत सालों से की जा रही थी। इसके पीछे कई कारण हैं– एक यह कि अन्तर्राष्ट्रीय नीति में 18 साल की उम्र तक बचपन की अवस्था है, ऐसी बात स्वीकार की गई है और 18 साल तक के बच्चों को बाल अधिकार और संरक्षण के प्रावधान सुनिश्चित करना सभी देशों की सरकारों का फ़र्ज़ है (United Nations Convention on the Rights of the Child, 1989)। दूसरी बात यह कि सामाजिक-आर्थिक रूप से मज़बूत होने के मौक़ों का लाभ उठाने के लिए (जैसे– बेहतर नौकरी मिल पाना, कॉलेज तक पढ़ पाना) 12वीं कक्षा तक की शिक्षा एक ज़रूरी आधार बनती है। देश के प्रत्येक बच्चे के लिए ऐसा आधार उपलब्ध होना चाहिए, अन्यथा अधिकांश ग़रीब, अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति समूहों के बच्चे छोटी-मोटी कमाई से ही अपना जीवन निर्वाह करने के लिए मज़बूर होते हैं। तो अब यह सम्भावना सामने है कि सभी बच्चों को 12वीं कक्षा तक स्कूल पूरा करने का मौक़ा एक अधिकार के रूप में मिलने वाला है।

आँकड़े (Educational Statistics at A Glance, MHRD, 2018) हमारा ध्यान इस वास्तविकता की ओर खींचते हैं कि आदिवासी छात्रों में हर स्तर पर स्कूल छोड़ने की सालाना औसत दर का प्रतिशत अन्य सभी समूह के छात्रों से अधिक पाया जा रहा है। 2014-15 में कक्षा 9वीं और

10वीं के स्तर पर 25 प्रतिशत आदिवासी छात्र स्कूल छोड़ रहे हैं, जबकि कुल छात्रों की संख्या में इसका प्रतिशत 17 है। 2016 में कक्षा 10वीं की परीक्षा में बैठने और पास होने वाले आदिवासी छात्रों का प्रतिशत 65 है, जबकि कुल छात्रों में यह प्रतिशत 79 है। 12वीं कक्षा की परीक्षा के लिए यह आँकड़ा क्रमशः 68 और 78 है।

क्या ये आँकड़े नई शिक्षा नीति के अनुसार क़ानून व योजनाएँ बन जाने पर बदल सकेंगे? इस नई सम्भावना के सन्दर्भ में कई विचार उठते हैं जिनपर ग़ौर करना ज़रूरी है। पहला तो यही कि 2009 के शिक्षा के अधिकार क़ानून को अमल में लाने में केन्द्र और राज्य की सरकारों को कई मायनों में पिछड़ना पड़ा...(जैसे— पर्याप्त संख्या में शिक्षकों की भर्ती न कर पाना, सतत आकलन का सुचारु व सार्थक क्रियान्वयन न कर पाना, मानसिक और शारीरिक प्रताड़ना से बच्चों की रक्षा न कर पाना, स्कूल के निर्धारित मानकों का सभी सरकारी और निजी स्कूलों के लिए उपयोग न कर पाना) जबकि उसके दायरे में केवल 6 से 14 साल की उम्र के बच्चे ही थे। अब यह भरोसा कैसे बने कि 3 से 18 साल की उम्र तक के बच्चों को अधिकार दे पाने में सरकारों की तैयारी वाक़ई में बन सकेगी?

दूसरी ओर, जिस अहम सवाल पर बहुत सोचने की ज़रूरत है वह है कि बहुत से बच्चे 14-15 साल में स्कूल की पढ़ाई क्यों छोड़ देते थे? सरसरी तौर पर यह बात मानी जाती रही है कि लोग पैसे कमाने व परिवार पालने की मज़बूरी में आगे नहीं पढ़ते हैं। जब हम वास्तविक उदाहरणों को बारीक़ी से देखते हैं, तो पाते हैं कि यह अकेला या सबसे बड़ा कारण भी शायद नहीं होता। क्या अब उनके स्कूल की पढ़ाई छोड़ने के कारणों पर कुछ संवेदनशील कदम उठाए जाएँगे ताकि बच्चे स्कूल की राह से अलग होकर, किसी और राह पर चल निकलने के रुझान को काबू में कर सकें? क्या गम्भीर पारिवारिक या मानसिक विकटता की स्थितियों से जूझते हुए लोगों के लिए 18 साल की उम्र तक शिक्षा का लाभ ले पाना एक आकर्षक और गरिमामय अवसर बन सकेगा?

स्कूल छोड़ने के हालातों की समीक्षा करने के लिए हम यहाँ कुछ युवाओं के साथ किए गए साक्षात्कारों को उद्धृत करना चाहती हैं। इनको पढ़ते हुए हम उन लकीरों को पहचानने की कोशिश करेंगे जो 12वीं तक के स्कूल के जीवन की तरफ़ न जाकर कहीं और ही जा रही होती हैं। ये साक्षात्कार 2016 में मध्यप्रदेश के छिंदवाड़ा ज़िले के तामिया विकासखण्ड के कुछ गाँवों में किए गए थे। इनमें जिन लोगों से बातचीत हुई, वे गोण्ड और भारिया जनजाति के वे युवक/युवतियाँ थे जो पढ़ाई छोड़ चुके थे।

तामिया के आदिवासी अंचल में लोगों को जानते-समझते हुए हम इस बात को महसूस कर पाए कि बच्चे किस तरह के पारिवारिक परिवेश में बड़े होते हैं। कई बच्चे अकेले घरों में रहते थे, कई किसी एक वृद्धा के साथ— अकसर नानी के साथ। माता-पिता पलायन पर चले जाते हैं या एक-दूसरे का ही साथ छोड़ देते हैं, और बच्चे किसी सगे-सम्बन्धी के सहयोग से जीवनयापन करते हैं या अकेले अपने दम पर भी। उन बच्चों में डॉक्टर, शिक्षक और पुलिसकर्मी जैसे पेशों में जाने का चाव था, वहीं मौक़ा मिलने पर उनकी किसी भी तरह के उत्पादक काम में लग जाने की तैयारी थी। उनकी अपने ऊपर किसी ज़ोर-ज़बरदस्ती और दबाव को ज़्यादा सहन न करने की प्रवृत्ति भी मज़बूत थी। उनकी अपनी मज़बूरी कहीं ऐसी नहीं थी कि वे पढ़ ही नहीं पाते। कुछ समाज का माहौल था, कुछ शिक्षा व्यवस्था के तक़ाज़े थे— कि कई लोग स्कूल से अलग हो गए— न चाहते हुए भी।[1]

समाज के मूल्यों, अपनी भावनाओं और ग़रीबी की लकीरें

दिनेश

दिनेश करीब 16 साल की उम्र का होगा। वह दो साल पहले सातवीं तक पढ़ा और फिर पढ़ाई छूट गई। दिनेश के पिता ने उसकी माँ को छोड़ दिया है। वह जिस

महिला के साथ रहने लगे, उससे दो बच्चे हुए। दिनेश की माँ भी दूसरे पुरुष के साथ रहने चली गई। इसलिए दिनेश अपनी नानी के पास रहने आ गया। उसके दो मामा हैं और कोई भाई या बहन नहीं हैं।

दिनेश के अब स्कूल न जाने की वजह जाति प्रमाण पत्र का न होना है। स्कूल वाले प्रमाण पत्र माँगते हैं और उसके पिता उसपर दस्तख़त नहीं कर रहे। स्कूल के टीचर ने दो-तीन बार उसके पिता से जाकर बात की और कोशिश की कि वह दस्तख़त कर दें लेकिन वह नहीं माने।

दिनेश के पिता उससे कोई नाता नहीं रखना चाहते और इसलिए वह किसी काग़ज़ात पर उसके साथ के रिश्ते को भी क़बूलना नहीं चाहते। उन्हें डर है कि आगे चलकर वह उनकी ज़मीन में हिस्सा माँगेगा। और वह ज़मीन उसके पिता अपनी नई पत्नी से हुए बच्चों के लिए रखना चाहते हैं। उनके पास डेढ़ एकड़ ज़मीन है। दिनेश की नानी के पास भी डेढ़ एकड़ ज़मीन है। लेकिन उसके मामा भी तो हैं!

दिनेश आगे पढ़ना चाहता है और वह बहुत दुखी है कि वह पढ़ नहीं पा रहा।

दिनेश के बारे में जानकर हमारे मन में सबसे पहले यह बात आई कि क्या हम नागरिक के रूप में बच्चों को देखते हैं या किसी के बेटे-बेटी के रूप में ही? अगर किसी व्यक्ति को माता-पिता का सहयोग न मिले तो क्या एक नागरिक के नाते उसे अपनी शिक्षा का अधिकार पाना इतना कठिन हो जाना चाहिए? दिनेश के परिवार में बहुत थोड़ी-सी ही सम्पत्ति है उसका हक़ न मिले तो एक बात, पर सम्पत्ति के फेर में शिक्षा के हक़ से भी वंचित होना पड़े, तो जीवन के लिए आधार ही क्या बचा? सवाल तो यह भी उठ सकता है कि क्या बाल अधिकारों के तहत दिनेश के माता-पिता किसी हद तक दोषी समझे जा सकते हैं, और फिर यह भी कि जनजातीय समाजों में वैवाहिक सम्बन्धों के जो मापदण्ड हैं, वे अगर राष्ट्रीय क़ानूनों और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियों के मापदण्डों से अलग हैं, तो इनके बीच संवाद कैसे किया जाए? दिनेश के सन्दर्भ में क्या हम यह नहीं सोचें कि उसे पिता के दस्तख़त से छूट मिल जाती व किन्हीं और सम्बन्धियों या गवाहों के आधार पर प्रमाण पत्र मिल जाता तो उसका स्कूल का सफ़र बीच में रुकता नहीं? यहाँ ज़रूरी है कि हम समय गँवाए बग़ैर एक किशोर मन को प्रेरणा और सुरक्षा देने की चिन्ता करते हुए तकनीकी समाधानों के बारे में सोचें।

संगीता

संगीता ने स्कूल जाना 5 साल की उम्र से शुरू किया था। वह रोज़ स्कूल जाती थी। शुरुआत में उसे स्कूल में शिक्षकों के 'चेंगने' (डाँटने) से डर लगता था, लेकिन बाद में उसे स्कूल जाना, पढ़ाई करना और दोस्तों से बातें करना अच्छा लगने लगा। वह आगे और पढ़ाई करके डॉक्टर बनना चाहती थी, लेकिन आठवीं के बाद ही उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी।

संगीता ने बताया कि स्कूल छोड़ने के बाद उसे बहुत बुरा लगता था। गाँव के अन्य बच्चों को स्कूल जाते देख उसका भी स्कूल जाने का मन करता था। अभी वह 16 साल की है, पढ़ाई छोड़े उसे 2 साल हो चुके हैं। पहले घर का काम उसकी दीदी और मम्मी सँभालते थे, लेकिन दीदी की शादी के बाद अब उसे ही घर का काम करना पड़ता है। इसके अलावा एक वजह आर्थिक समस्या भी थी। संगीता के पिता नहीं हैं। उसकी मम्मी घर के काम करती हैं और फिर रोज़गार गारण्टी योजना में मज़दूर का काम भी करती हैं। उसके दो बड़े भाई भी हैं, एक भाई की उम्र 21 साल और दूसरे की 18 साल है। बड़ा भाई खेत का काम करता

है और छोटा भाई ड्राइवर का काम करता है। संगीता ने बताया कि वह पढ़ाई करना चाहती है। पर अब वह घर का काम ख़त्म करके दोस्तों के साथ चौपाल पर उनसे बात करने या फिर मोहल्ले में किसी के घर पर टीवी देखने चली जाती है।

संगीता के घर के काम में क्या उसके भाई ज़्यादा मदद कर सकते थे? जेण्डर समानता के मूल्य को सामने रखकर सोचने पर परिवार के लोग संगीता की पढ़ाई जारी रखने का कोई और रास्ता निकाल सकते थे। अगर 18 साल की उम्र तक अनिवार्य शिक्षा के अधिकार का क़ानून बनता है तो संगीता जैसी कई लड़कियों को स्कूल भेजने के रास्ते उनके परिवारों में निकाले जाएँगे, ऐसी उम्मीद की जा सकती है। पर इससे परिवारों पर जो कठिनाई बढ़ेगी, उसको अनदेखा करना भी ठीक न होगा। छोटे किसानों (जैसे– उसका भाई) और मज़दूरों (जैसे– उसकी माँ) की आमदनी में बढ़ोतरी के क़दम भी ज़रूरी होंगे ताकि वे संगीता जैसी लड़कियों को स्कूल जाने का समय व सुविधा दे सकें। आख़िर समाज में सारी बातें एक-दूसरे के साथ गुँथी हुई होती हैं और उनपर समग्रता से क़दम न उठाए जाएँ तो बदलाव के सिलसिले अधबीच ही ख़त्म हो जाते हैं।

अब हम कुछ और उदाहरणों पर ग़ौर करते हैं और देखते हैं कि किस तरह की स्थितियों में शिक्षा के अधिकार का होना 12वीं तक पढ़ाई पूरी करने के लिए मददगार बन सकेगा।

अज्जू

अज्जू 23 साल का है। वह दस साल पहले पाँचवी कक्षा पास करके घर छोड़ गया था। वह पढ़ाई से नहीं भागा था पढ़ाई तो उसे पसन्द थी। बस गुणा-भाग में उसे थोड़ी दिक़्क़त होती थी। समझ न आने पर मास्टर से पूछना पिटाई को न्यौता देना होता था, तो वह बेहतर यही समझता था कि क्लास से उठकर ही चला जाए। पूछने से तो अधिकतर डर ही लगता था। अज्जू सपने में ख़ुद को पुलिस इंस्पेक्टर के रूप में देखता था। उसको लगता था कि मैं पुलिस बनकर सबको डराऊँगा।

पर अज्जू की माँ 2001 में हैज़े की शिकार हो गई। उसके पिता को शराब पीने की लत थी। अज्जू और उसके चार भाई जैसे भी चाहते थे रहते थे। कोई ध्यान रखने वाला नहीं था। माँ के देहान्त के तुरन्त बाद उनके रिश्तेदार घर आए और सबने बच्चों को अलग-अलग ले जाना निश्चित किया। अज्जू किसी रिश्तेदार के साथ नहीं गया। पाँच साल तक ऐसे ही जीवन काटने के बाद वह एक मास्टरजी के यहाँ चला गया। उसने अपने दोस्त से सुना था कि मास्टरजी कुछ काम करने के लिए एक लड़का रखना चाहते हैं।

अज्जू ने वहाँ रहकर काफ़ी काम किए। बैल-बकरी की ज़िम्मेदारी से शुरू होते हुए मास्टरजी के पचास एकड़ के खेत के काम भी वह करने लगा। फिर उनकी जीप, गाड़ी, ऑटो के रखरखाव की भी ज़िम्मेदारी आ गई। अपने-आप ड्राइविंग सीखकर वह उनकी गाड़ी भी चलाने लगा। उसने बस पढ़ाई ही नहीं की, बाक़ी उसने वहाँ काफ़ी काम किए। मास्टरजी ने भी उसे पढ़ाने की कोई कोशिश नहीं की।

फिर पिछले साल मास्टरजी ने अपने एक रिश्तेदार की बेटी से अज्जू की शादी करवा दी। शादी के बाद अज्जू अपनी पत्नी के साथ अपने पिता के घर लौट आया।

इस बीच अज्जू के पिता भी बदल गए थे और उन्होंने शराब पीना छोड़ दिया था। वे अपने पाँच एकड़ के खेत में काम करते हैं। अज्जू की पत्नी 11वीं कक्षा पास है और सिलाई का काम करती है। अज्जू

अब मज़दूरी करता है और साथ-साथ अपने खेत में काम भी। उसे अब दोबारा पढ़ने का ख़्याल आया है। पढ़ने के लिए जो मानसिक सहारा उसे मिलना चाहिए था, वह उसको न तो अपने पिता से न ही मास्टरजी से मिला था। उसकी प्रायमरी की शिक्षिका ज़रूर उसको पढ़ने में मदद करना चाहती थीं, पर वे उसे तम्बाखू खाने के लिए टोकती थीं इसलिए शायद अज्जू उनके पास नहीं जाता था। अब वह अपनी पत्नी के सपोर्ट से आगे पढ़ना चाहता है।

राजू

राजू 23 वर्ष का है। उसने 10वीं के बाद स्कूल छोड़ दिया। उसने बताया कि उसके बड़े भैया 12वीं तक पढ़े। उन्होंने कुछ साल तामिया के हॉस्टल में रहकर भी पढ़ाई की। राजू को भी 10वीं के बाद बाहर रहकर पढ़ना था, लेकिन उसे नहीं भेजा गया। उसे लगता था कि बाहर रहकर पढ़ने से ज़्यादा समय पढ़ सकते हैं। और बाहर के लोगों से सम्पर्क में आने से समझने और बात करने के तरीक़े में भी बदलाव आ जाता है। उसके सभी दोस्त बाहर रहकर ही पढ़ रहे थे। जब उसे बाहर रहकर पढ़ने से मना कर दिया गया तो उसने भी गुस्से में आकर आगे नहीं पढ़ने का मन बना लिया। फिर उसने घर में खेत का काम, जुताई-बुआई, घर बनाने की मज़दूरी, रोज़गार गारण्टी योजना में सड़क बिछाने का काम, पहाड़ों में पेड़ों के नीचे पानी रोकने के लिए गड्ढे खोदने का काम और नालों का पुराव करने का काम किया। इसके अलावा गर्मी के मौसम में उसने ट्रैक्टर चलाने का काम भी किया। फिर 2014 में वह स्कूल में चपरासी के काम पर लग गया। स्कूल खोलना, पानी भरना, झाड़ू लगाना, चाय बनाना और घण्टी बजाना जैसे काम हैं उसके हिस्से में। इन सब कामों के बदले उसे महीने के चौदह सौ रुपए मिलते हैं। कुछ समय में जब वह परमानेण्ट हो जाएगा तो साढ़े चार हज़ार रुपए मिलने लगेंगे।

इन मामलों में हम देखते हैं नशे की मज़बूरी– पिता की, बेटे की भी, स्कूल के उस मास्टरजी की बदनीयत जो स्कूल जाने की उम्र के लड़के से काम करवाते थे और उसे स्कूल भेजने में मदद नहीं करते थे– ऐसी हर एक स्थिति अपने-आप में विकट और विशिष्ट बन जाती लगती है। कम-से-कम इस तरह के मामलों में 18 साल की उम्र तक शिक्षा का अधिकार बनाया जाना असर डालेगा और अज्जू जैसा कोई बच्चा पाँच साल तक भटकेगा नहीं, मास्टरजी बच्चे को घर के काम में लगाने की बजाय स्कूल में भेजकर उसे पढ़ने देंगे, कोई राजू गुस्से में आकर पढ़ाई छोड़ेगा, तो उसको अनदेखा नहीं किया जाएगा। ये सम्भावनाएँ एक स्तर पर सकारात्मक लगती तो हैं, पर उनके साथ किशोर लोगों की इच्छा, स्वतंत्रता और ख़ुद्दारी पर एक साया-सा भी आ जाता है जो सकारात्मक नहीं हो सकता। लोगों के अधिकारों के साथ भावनात्मक समर्थन, सुरक्षा और उत्साह का सच्चा परिवेश कैसे बने, यह फ़िक्र करना भी ज़रूरी है जिससे कि अधिकार की वास्तविकता मज़बूरी और परतंत्रता के अहसास में तब्दील न हो जाए।

शिक्षा योजना की लकीरें

समाज, परिवार और अपनी भावनाओं की लकीरों के अलावा शिक्षा योजना की ही कई ऐसी लकीरें हैं जो बच्चों को स्कूल से बाहर कर देती हैं। जैसे– 10वीं तक के पाठ्यक्रम की योजना और बोर्ड परीक्षा का स्वरूप। नई नीति का ड्राफ़्ट इन बातों में सुधार और लचीलेपन की वकालत करता तो है, पर उसके ठोस सुझाव नहीं रखता। जैसे– यह कहा गया है कि कक्षा 9वीं-10वीं और सेकेण्डरी स्तर पर पाठ्यक्रम का बोझ कम करते हुए कोशिश की जाएगी कि प्रमुख अवधारणाओं और विचारों पर ध्यान दिया

जाए और छात्रों को लचीलेपन के साथ अपने अध्ययन के विषय चुनने और बदलने के मौक़े मिलें, गहराई के साथ और अनुभव पर आधारित अध्ययन करने के मौक़े मिलें। यह भी कहा गया है कि पाठ्यक्रम के अलग-अलग हिस्सों के बीच कड़े विभाजन ख़त्म किए जाएँ और आपसी जुड़ाव बनाए जाएँ जैसे– अकादमिक शिक्षा, व्यावसायिक शिक्षा, कला, खेलकूद आदि के बीच में। आकलन के मामले में यह कल्पना रखी गई है कि मिडिल, हाई और हायर सेकेण्डरी स्कूल की परीक्षाएँ व आकलन कम्प्यूटराइज़्ड हो जाएँ जिनमें केवल प्रमुख अवधारणाओं, कुशलताओं और उच्चस्तरीय विचार करने की क्षमताओं का आकलन किया जाए।[2]

जब 6 से 14 साल के बच्चों के लिए हम ऐसे समग्र आकलन का सफल प्रयास नहीं कर पाए जो उनके विकास में सहायक हो और अब हम बच्चों को फ़ेल करने की नीति की ओर लौट रहे हैं, तब कक्षा 9वीं से 12वीं के लिए इस तरह की आदर्श कल्पनाओं को अमलीज़ामा पहनाने की प्रतिबद्धता हमारे नेताओं की बन पाएगी, यह भरोसा करना मुश्किल है। फिर भी, इस बात से कोई इनकार नहीं कर सकता कि आकलन और पाठ्यक्रम के मुद्दे का हल निकाले बग़ैर शिक्षा का अधिकार 18 साल तक बढ़ाना अर्थहीन होगा। आइए, कुछ किशोरों के साक्षात्कार पढ़ते हुए इस मसले की गम्भीरता पर विचार करें।

कमला

कमला 20 वर्ष की है। उसने दसवीं कक्षा में स्कूल छोड़ा। उसे पाँचवी कक्षा तक स्कूल जाना अच्छा लगता था। उसके पसन्दीदा विषय सामाजिक अध्ययन और हिन्दी थे। गणित, विज्ञान और अँग्रेज़ी उसको नापसन्द थे। कमला दसवीं से पहले कभी फ़ेल नहीं हुई थी। दसवीं में उसको गणित, विज्ञान और अँग्रेज़ी विषयों में पूरक (सप्लीमेण्टरी) आई। उसने दोबारा परीक्षा दी। इस बार गणित में पूरक आ गई। फिर माँ-बाप ने आगे नहीं पढ़ाया। माँ आशा कार्यकर्ता हैं, और पाँचवी पास हैं। पिता 5-6 एकड़ ज़मीन पर खेती करते हैं और चौथी पास हैं। एक भाई तामिया में और छोटा भाई परासिया में बारहवीं में पढ़ते हैं। भाई भी एक बार 10वीं में फ़ेल हुआ था। दोबारा परीक्षा देने पर पास हुआ। कमला को लगता है कि वह प्राइवेट फ़ॉर्म भर कर परीक्षा दे सकती थी, फ़ीस भी छह-सात सौ रुपए ही लगती जो ज़्यादा नहीं होती! पर ऐसा नहीं हो पाया।

विजय

विजय ने कक्षा सातवीं के बाद पढ़ाई छोड़ दी। वह पढ़ाई करके डॉक्टर बनना चाहता था। स्कूल में उसे हिन्दी पढ़ना अच्छा लगता था लेकिन अँग्रेज़ी विषय में उसकी रुचि नहीं थी। उसे अँग्रेज़ी पढ़ने में कठिन लगती थी। उसने सातवीं कक्षा में अँग्रेज़ी विषय में फ़ेल होने की वजह से पढ़ाई ही छोड़ दी। इसके पहले वह एक बार कक्षा चौथी में भी फ़ेल हो चुका था इसलिए अब वह स्कूल नहीं जाना चाहता है। उसके माता-पिता ने स्कूल जाने के विषय में उसे बहुत समझाया, पर उसने ख़ुद की मरज़ी से स्कूल जाना बन्द कर दिया।

पढ़ाई छोड़ने के बाद विजय अब घर के कामों में मदद करता है। अभी उसका घर बन रहा है, तो वह उसे बनवाने में भी मदद करता है। इसके अलावा वह खाली समय में दोस्तों के साथ घूमता और खेलता है। गाँव में कुछ लोगों के घर पर टीवी भी लगा है जिसमें विजय का घर भी शामिल है, इस कारण विजय को टीवी देखना भी बहुत पसन्द है।

सियाराम

सियाराम 18 वर्ष का है। वह अपने माता-पिता के साथ खेतीबाड़ी का काम

करता है। हाल ही में उसने खेत के काम में पत्थर उठाने से शुरुआत की है। उसके परिवार के पास 15 एकड़ ज़मीन है और उसके अलावा घर में दुकान भी है। सियाराम ने 2013 में 10वीं तक निरन्तर बिना फ़ेल हुए पढ़ाई की। सियाराम 12वीं तक पढ़ने के बाद इलेक्ट्रॉनिक्स से जुड़े हुए काम करना चाहता था। उसके घर में कोई भी इससे जुड़ा हुआ नहीं था। सियाराम की इस काम में रुचि उसके मोबाइल के गिरने के बाद शुरू हुई। जब उसने अपना मोबाइल ठीक करवाने के लिए दुकान में पता किया तो सभी ने उसे 200 रुपए में ठीक करने को कहा। लेकिन सियाराम ने छिंदवाड़ा जाकर एक मोबाइल की दुकान से 50 रुपए में अपने मोबाइल का डिस्प्ले खरीदकर उस फ़ोन को ख़ुद ही सुधारने का सोचा और प्रयास भी किया।उस प्रयास में वह सफल भी हुआ, इसके बाद उसकी रुचि इस काम से जुड़े विषय में और ज़्यादा बढ़ गई। यह काम उसने 10वीं कक्षा में किया था, लेकिन 10वीं में अँग्रेज़ी में पूरक (सप्लीमेण्टरी) आने की वजह से उसे पढ़ाई छोड़नी पड़ी। उसने बताया कि उसके फ़ेल होने की वजह शिक्षक के पढ़ाने के तरीक़े में नहीं थी और न ही उनके बर्ताव में थी। उसकी मूल वजह उसका अँग्रेज़ी में रुचि न होना था। सियाराम अँग्रेज़ी को पहली कक्षा से ही पढ़ रहा था, पर पूरक आने के बाद वह पढ़ाई नहीं करना चाहता था। उसने पूरक परीक्षा का फ़ॉर्म भी नहीं भरा क्योंकि उसे अपने से छोटे बच्चों के साथ फिर से उसी कक्षा में पढ़ाई करने में झिझक थी, इसलिए वह वापस पढ़ाई करने स्कूल भी नहीं जाना चाहता था।

पढ़ाई छोड़ने के बाद वह अपने एक दोस्त के साथ बैंगलुरू के यशवंतपुर में एक तम्बाकू फ़ैक्टरी में काम करने चला गया। वहाँ पर वह तम्बाकू की पैकिंग का काम करता था। उसका दोस्त वहाँ पहले से ही काम करता था। जब वह काम करने घर से दूर गया, तब उसकी उम्र 16 साल थी। फ़ैक्टरी में रात के समय चौकीदार के अलावा और कोई नहीं होता था इसलिए रात में काम के वक़्त सो भी सकते थे क्योंकि रात में कोई देखने नहीं भी आता था। बैंगलुरू में उसके रहने का किराया और खाने के पैसे भी नहीं लगते थे, वह सारा ख़र्च ठेकेदार वहन करता था। उसे वहाँ काम करने के 7000 रुपए प्रति माह के मान से मिलते थे। उसके साथ उसके कमरे में 20-25 लोग और रहते थे। उसने बताया कि उस फ़ैक्टरी में और भी लोग काम करते थे जो कि मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, बिहार और उत्तरप्रदेश के रहने वाले थे। वह अपने घर में बिना बताए ही बैंगलुरू काम करने चला गया, बाद में जब घर पर बताया तो उसे डाँट पड़ी। घर से दूर रहकर काम करना अच्छा नहीं लग रहा था, इसलिए वह तीन महीने बाद ही घर वापस आ गया। घर पर उसने खेतीबाड़ी का काम, मज़दूरी (ईंटा-गारा) इत्यादि का काम किया।

सियाराम को पढ़ाई छोड़े तीन साल हो चुके हैं। उसने बताया कि वह अब फिर से पढ़ाई करना चाहता है और इस बार वह कृषि विज्ञान विषय लेकर कॉलेज तक पढ़ाई करना चाहता है जिससे वह अपने खेत में उन्नत तरीक़ों से खेती कर सके।

कमल

कमल 19 वर्ष का है। वह अपने माता-पिता, बहन, दो बैल, दो गाय, दस बकरी और एक घोड़ी के साथ रहता है। पिता दूसरी कक्षा तक पढ़े हैं, माँ पढ़ी-लिखी नहीं हैं। बहन (16 वर्ष) आठवीं पास करके 2013 में पढ़ाई छोड़ चुकी है। कमल से बड़ी तीन बहनें हैं, जिनकी शादी हो चुकी है। जैसे-जैसे बड़ी बहनों की शादियाँ

होती गईं, वैसे-वैसे छोटी बहनों की पढ़ाई छूटती गई। घर की ज़मीन काफ़ी कम है, इसलिए दूसरों के खेतों में बुआई के लिए जाना होता है। पिता एक पैर से ही चल सकते हैं। वह घोड़ी पर इधर- उधर जा सकते हैं तो जानवरों के साथ चले जाते हैं। उसके एक जीजाजी उसके पापा की मदद के लिए यहीं रह रहे थे। खेती का काम, हल बक्खर का काम वे ही कर लेते थे।

कमल को कक्षा 10वीं के रिज़ल्ट में विज्ञान विषय में पूरक आई, पर यह बात उसे देर से समझ में आई और तब तक फ़ॉर्म जमा करने की तारीख़ निकल चुकी थी। फिर अगले साल फ़ॉर्म भरा। तब तक उसके जीजाजी अपने घर वापस जा चुके थे। अब सब कुछ कमल को ही करना था, तो पढ़ाई नहीं हुई। फिर परीक्षा दी तो तीन विषयों में फिर पूरक आ गई। उसके बाद उसने पढ़ाई छोड़ दी।

जीजाजी के पहले, जब कमल छोटा था तब मोहल्ले वाले उसके पापा की हल-बक्खर में मदद कर दिया करते थे। लेकिन फिर जब कमल बड़ा हो गया तो उन्होंने भी कहा कि अब यह ही अपने पिता की मदद करेगा।

अँग्रेज़ी में फ़ेल होना बहुत लोगों को आहत करता है। क्या नई स्कूली शिक्षा उनके लिए किसी तरह का सम्मानजनक विकल्प देगी? 10वीं की परीक्षा में सभी विषयों को पास करना आसान नहीं है— ऐसे में किशोर उम्र के लोगों का फ़ेल होना, उनका दोबारा परीक्षा देना, फिर किसी विषय में पूरक आना— यह सिलसिला बहुत से बच्चों को पछाड़ देता है। ये वह उम्र भी है जब कामकाज की ज़िम्मेदारी कन्धों पर उठाई जा सकती है— ख़ुद का मन भी करता है और दूसरों की अपेक्षा भी होती है। फिर किसी परिवार में कोई सदस्य विकलांगता का सामना कर रहा हो, तब तो युवा सदस्यों के लिए ज़िम्मेदारी भी बढ़ती है। क्या पूरक आने के गतिरोध को दूर करने के लिए कोई कदम उठाया जाएगा?

10वीं तक सामान्य शिक्षा की नीति है जिसमें सभी विषयों का अध्ययन करना आवश्यक है। इसमें किस तरह का लचीलापन आ सकता है, सोचना होगा। यह एक हक़ीक़त है कि सभी विषयों के योग्य शिक्षक बड़ी संख्या में उपलब्ध नहीं होते। बहरहाल, जैसे भी शिक्षक किसी बच्चे को मिलें, उनकी मदद से वह सभी विषयों को सन्तोषजनक स्तर तक तो सीख-समझ ही लेगा, यह अपेक्षा बहुत अवास्तविक और ऊँची है। राज्य को स्वयं से यह अपेक्षा ज़रूर करनी चाहिए और जिस हद तक वह इसमें सफल होता है उस हद तक बच्चों की उपलब्धि में सुधार आने भी लगेगा, ऐसी उम्मीद भी रखी जानी चाहिए। पर यह मान लेना कि सभी बच्चों को सभी विषयों को पास कर लेना है— पहली बार में नहीं तो 2-3 बार में— एक न्यायसंगत माँग नहीं है। शैक्षिक योजना की इस माँग पर खुले मन से विचार न किया गया तो 18 साल तक की अनिवार्य शिक्षा के अधिकार की कारगरता पहले ही कटघरे में सिमट जाएगी। आगे सोचते हुए इस बात पर ग़ौर करें कि जब 12वीं कक्षा तक सबको स्कूल लाना राज्य के लिए अनिवार्य होगा और यह बच्चों का अधिकार होगा, तो उनको फ़ेल करके बाहर धकेलना सम्भव नहीं होना चाहिए। इसके तहत परीक्षा सम्बन्धी सुधार अनिवार्य हो ही जाएँगे। यही बात 14 साल की उम्र तक के लिए 8वीं कक्षा तक फ़ेल न करने व पिछली कक्षा में न रोकने की पाबन्दी लगाकर निरूपित की गई थी। लेकिन, दुख की बात है कि शिक्षा के अधिकार के इस निहितार्थ को लोग हज़म नहीं कर पाए और उसे पलटने के लिए एड़ी-चोटी की कोशिशें की गईं जो 2019 जनवरी में संसद में पारित संशोधन में सफल भी हुईं।

इस तरह उल्टी दिशा में मुँह करने के क्या परिणाम होंगे, यह आने वाले सालों में सामने

आएँगे। और जब पास-फ़ेल के बारे में यही रुख़ रहने के आसार हैं, तो 18 साल की उम्र तक के शिक्षा के अधिकार से क्या फ़र्क़ पड़ेगा?

हमने जो साक्षात्कार यहाँ पढ़े हैं, उनमें एक आदिवासी अंचल के किशोर उम्र के लोगों के नाज़ुक अहसासों और हालातों की कुछ झलकें भर हैं। नीतियाँ बनाने में एक स्थिर, सक्षम, मध्यमवर्गीय परिवार की मान्यता काम करती नज़र आती है। पर यह आदिवासी अंचलों की वास्तविकताओं से बहुत दूर है। कम-से-कम ये ग़रीब आदिवासी किशोर स्कूल से मुँह मोड़कर भी अपने जीवन में काफ़ी कुछ करने के लिए पा जाते हैं, और अपनी जान लेने पर नहीं उतर आते। उनके सामने हैसियत और इज़्ज़त गँवाने के नि:शक्त करने वाले अहसास शायद अभी नहीं हैं। उनके पास अपने ऊपर हो रही ज़बरदस्ती से बचने और दूसरी राहें बनाने के अहसास मौजूद हैं, जिनसे वे आगे की इच्छाओं और सपनों को फिर से बुनने लग सकते हैं– जैसे-जैसे ज़िन्दगी का साथ आगे मिलता जाए। देखना यह है कि शिक्षा नीति और राज्य इन मोड़ों पर लोगों के साथ खड़े होते हैं या नहीं।

---

1. यह काम जमशेदजी टाटा ट्रस्ट के सहयोग से 4 साल के एक प्रोजेक्ट का हिस्सा था। स्कूल छोड़ने वाले लोगों के साक्षात्कार लेने और उन्हें लिखने का काम मुख्य रूप से भोपाल की आकाँक्षा त्यागी ने किया। साक्षात्कारों के दौरान श्वेता नांबियार, मेघा चौधरी, जयराम कासदे, श्याम कोयल बुद्धि, श्रवण कासदे, निलेश मालवीय और कुलदीप साहू ने सहयोग प्रदान किया।
लेख को बेहतर बनाने में अरविन्द सरदाना और सी एन सुब्रह्मण्यम ने सुझाव दिए।

2. 16 से 18 साल की उम्र में लोग काम पर लगने की तैयारी में होते हैं। इस समय स्कूल में उन्हें बनाए रखने के लिए उपयुक्त स्थितियाँ बनानी ज़रूरी हैं। नई योजना ने यह प्रस्ताव दिया है कि हाई स्कूल और हायर सेकण्डरी स्कूल स्तर पर पाठ्यक्रम लचीला हो और व्यावसायिक विषयों को भी इसमें शामिल किया जाए। इस स्तर पर छात्रों के लिए मध्याह्न भोजन और समुचित छात्रवृत्तियों की सुविधा भी बहुत मददगार हो सकती है। छत्तीसगढ़ में हुए एक अध्ययन में यह पाया गया कि कक्षा 9वीं व 10वीं के किशोर-किशोरियों में भी कुपोषण की दर काफ़ी ज़्यादा थी।

रश्मि पालीवाल एकलव्य संस्था में 1982 से जुड़ी हुई हैं। सामाजिक अध्ययन शिक्षण के क्षेत्र में प्रमुख रूप से काम किया है। एकलव्य के प्रकाशनों के सम्पादन में सहयोग करती हैं। ज़मीनी स्तर पर प्राथमिक शिक्षा में सुधार की परियोजनाओं को लागू करने व उनका अध्ययन करने के प्रयासों से जुड़ी हुई हैं। 'बाल विकास विशेष ज़रूरतें और सीखना' नाम के सर्टिफ़िकेट कोर्स के संचालन से भी जुड़ी हैं।

सम्पर्क : paliwal_rashmi@yahoo.com

आकाँक्षा त्यागी कंसलटेण्ट के तौर पर दिल्ली में लैंग्वेज एंड लर्निंग फॉउण्डेशन के साथ प्रारम्भिक भाषा शिक्षण के शिक्षक प्रशिक्षण, बहुभाषी शिक्षण सामग्री के निर्माण, डॉक्यूमेंटेशन एवं लेखन जैसे कामों से जुड़ी हैं। एकलव्य के साथ भोपाल में बहुभाषिता कार्यक्रम में काम किया है।
सम्पर्क : post.akanksha@gmail.com